परमप्रेम भक्ति

भगवान् नारद ने लिखा है– "ईश्वर के साथ परमप्रेम को भक्ति कहते हैं।" ऐसी ईश्वर भक्ति अमृतस्वरूपा है, मधु से मीठी, अमृत जैसी मधुर है। 'शाण्डिल्य–सूत्र' में कहा है कि "**सा परमानुरक्तिरीश्वरे**" अर्थात् ईश्वर से पूरी आसक्ति का नाम भक्ति है। 'नारद–पांचरात्र' में लिखा है :

अनन्यसमता विष्णौ ममता प्रेमसङ्गता।

'ईश्वर में अनन्य प्रेमयुक्त अनन्य ममत्व का अनुभव भक्ति है।' और यह 'अनन्यता' क्या है ? उसका उत्तर नारद जी यह देते हैं–"**अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता**" अर्थात् 'दूसरे का (अन्य का) आश्रय छोड़ देना अनन्यता कहलाती है।'

वेद भगवान् ने भी तो यह आदेश किया है :

"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय"

'उसको जानने का अन्य कोई मार्ग नहीं है।' मीरा मस्त होकर यही तो गाया करती थी :

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोय रे।

सारे आश्रय त्यागकर, संसार की आसक्तियाँ तोड़कर जब एक भगवान् की शरण पकड़ ली जाती है, भक्त और साधक का हृदय तब प्रेम–सागर से उमड़ पड़ता है, प्रेम–ही–प्रेम में मग्न होकर वह अपने परमप्रिय को पुकारने लगता है :

बनी दीन गरीब अनाथ महा
यह दासी परी शरणागत तेरे।
सब स्वारथ मित्र से विश्व भरा,
अब तेरे सिवाय नहीं कोऊ मेरे।।
किये दोष अनेक अजानपने,
करि माफ करा, हौं रावरे चेरे।
तकसीरों को याद करो मत हा,
अब राखो दयानिधि चरण से मेरे।।

नन्हा शिशु रो रहा है, दूध की भूख लगी है, वह माँ ही से मिल सकता है। तब वह शिशु 'माँ–माँ' ही की रट लगा देता है। गाय का बछड़ा गाय से कहीं अलग हो गया। लगा पुकारने –'माँ–माँ–माँ !' और जब तक माँ नहीं मिली वह 'माँ–माँ–माँ' ही का जप करता रहा। पपीहा 'पी–पी' करता रहता है। प्रेमी प्रियतम के ध्यान में उसी को पुकारता रहता है। जब तक दर्शन नहीं होते, मिलाप नहीं होता, भक्त उसे पुकारता ही रहता है – ओ३म्, ओ३म्, ओ३म्। दर्शन जब नहीं होते तब रुदन प्रारम्भ हो जाता है। नेत्र जल–पूर्ण हो गए प्यारे को पुकारते। उसके गीत गाते कण्ठ रुकने लगा, रोमाञ्च होने लगा। अश्रुयुक्त नेत्रों से वह अनन्य भक्त प्यारे से कहता है :

सब जग भुल्लनहार !
तेरे दर्शन की आशा मन में लिए तुझे पुकारता हूँ। यह ठीक है कि मुझसे तेरे नियम प्रतिदिन टूटते हैं, न चाहता हुआ भी भूल कर ही बैठता हूँ, इच्छा यही होती है कि इस जीवन–यात्रा में पाँव न फिसलें, परन्तु फिसल ही जाते हैं। प्यारे ! क्या मेरे ही फिसलते हैं ? सभी के फिसलते हैं, प्राणेश्वर !

सब जग भुल्लनहार है।
इक अभुल्ल करतार है।।

कोई भी भूल न होगी तो फिर तेरा ही रूप न हो जाएँगे ? फिर तुझे काहे को पुकारेंगे ? हमारी भूल–चूक क्षमा करो, हमसे रूठो नहीं।

जे मैं भुल्ल बिगाड़िया, मैला करी न चित्त।
साहिब गौरा लोड़िये, नफर बिगाड़े नित्त।।

तेरा अनुग्रह–लाभ करने के लिए हे भगवन् ! तुझे पुकार रहा हूँ। यदि अपराधी हूँ तो भी, यदि पात्र या अधिकारी हूँ तो भी, तेरी दया के बिना तो कुछ बनने का नहीं। तेरी पवित्र वाणी वेद में तूने ही तो यह घोषणा कर रखी है कि :

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्।
भद्रं भवाति नः पुरः।। ऋ. 2.41.11

'जब वह शक्तिशाली भगवान् हमारे ऊपर दयालु होता है तो पाप हमारे पीछे नहीं पहुँचता, पाप हमारा पीछा नहीं करता और नेकी हमारे आगे होती है।'

फिर यह दयालुता कब के लिए रखी हुई है ? अब आओ ! दया करके दर्शन दे दो ! क्या मिलोगे नहीं ? कब तक मार्ग देखना होगा ? तेरा और मेरा एक हो जाने का समय कब आएगा ? कब 'मुण्डकोपनिषद्' की वाणी में मैं यह कह सकूँगा – "**परम साम्यमुपैति**"। ओह ! यह दिन देखने के लिए जीवित हैं, अन्यथा जीने को अब जी नहीं चाहता। तेरे दर्शन और मिलाप के बिना खाना–पीना, सोना–जागना, सब व्यर्थ प्रतीत होते हैं परन्तु यह सब इसलिए करता हूँ ताकि इस शरीर को जीवित रखकर तेरे दर्शन स्थूल शरीर से न सही, सूक्ष्म शरीर से तो पा सकूँगा। तेरे मिलने की आशा ही अब तक लिए फिरती है परन्तु तेरी कृपा के बिना यह दर्शन कहाँ ? सुना है तू दयामय है, स्नेहमय है, प्रेममय है, भक्तवत्सल प्रभु है, करुणामय स्वामी है, प्रीतिमय सखा है और प्यारपूर्ण कान्त है। तेरे ये सारे गुण तब मेरे काम किस दिन आएँगे ?

मेरे लिए कब ?

तू तड़पते हुए चातक के लिए स्वाति बूँद लाता है, सूखती खेती के लिए वृष्टि लाता है, सारे प्राणियों की क्षुधा मिटाने के लिए हर प्रकार का अन्न उपजाता है। तेरी ये सारी शक्तियाँ मेरे काम कब आएँगी ? सुना है तू ही था जिसने सुषुप्त प्रकृति में अपनी नन्ही–सी सामर्थ्य से वह गति उत्पन्न की कि यह सारी सृष्टि मूर्तिमान् होकर सामने आ खड़ी हुई। इतने बड़े विशाल संसार के धारण करने में, प्यारे ! जब तुझे कुछ भी श्रम नहीं हुआ तो हे सब शक्तियों के स्वामी ! मैं तेरा भक्त तो एक परमाणुरूप भी नहीं। मुझे सन्तोष देने में तुझे क्या श्रम होगा ?

क्या मेरा रुदन सहन कर लोगे ?

यही विचार करते–करते मेरे नेत्र जल बरसाने लगते हैं कि – यदि और प्रकार से नहीं तो रुदन देखकर तो तुम्हारा हृदय अवश्य द्रवित हो उठेगा :

कबीरा हँसना दूर कर,
रोने से कर चीत।
बिन रोये क्यों पाइये,
प्रेम पियारा मीत।।
हँस–हँस कंत न पाइया,
जिन पाया तिन रोय।
हंसे खेले पिव मिले,
कौन दुहागिन होय।।

भागवत में भी तो यही कहा है :

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रु कलया शुद्धयेद् भक्त्या विनाऽऽशयः।। भाग. 14.22

'रोमांच के बिना, भगवत् – चिन्तन से पिघले हुए चित्त के बिना और आनन्द से उत्पन्न अश्रु–बिन्दु के बिना, कैसे भक्ति प्रतीत होती है और भक्ति के बिना अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो सकता है ?"

शिशु का रुदन माता सहन नहीं कर सकती, फिर जब हटकोरे ले रहा हो तब तो माता सौ काम छोड़कर उसे गोद में उठा लेती है। 'माँ! रोते–रोते मेरी भी हिचकी बँध रही है। रोता ही रहूँगा, रोता ही रहूँगा, जब तक तू अमृत नहीं पिलाएगी, रोता रहूँगा।माँ ! मुझे मुक्ति न दे, बार–बार जन्म ही देती रह, परन्तु साथ ही अपना अनुग्रह और कृपा–दृष्टि भी। तभी तो तेरे दर्शन हो सकेंगे !

ऐसे ही घण्टों व्यतीत हो जाते हैं। रोते–रोते हृदय की मैल धुल जाती है। एक अद्भुत निर्मलता, पवित्रता, निरभिमानता, दीनता, सहनशीलता और दयालुता का प्रवाह हृदय से बहने लगता है। भक्त को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि वह सच्ची माता, वह प्रियतम, वह प्यारा, वह सबसे सुन्दर आ पहुँचा है। आकर बैठ गया है हृदय–मन्दिर में। कितनी सुन्दर शोभा है उसकी ! सारे तत्त्वों से निखरा हुआ, अन्तिम तत्त्व आकाश से भी ऊपर। ओह ! कितनी शुभ्र, कितनी चित्ताकर्षक ज्योति और आभा है ! प्रकाश–ही–प्रकाश ! तम का किसी कोर में चिह्न भी नहीं और हृदय ही में क्यों, खुली आँखों के सामने। यह विभिन्न पदार्थों में, चन्द्र में, पृथिवी में, जल में, वृक्षों में, वनस्पतियों में, सबमें तू ही आकर बैठ गया है। हाँ, तू ही–

जग में आकर इधर–उधर देखा।
तू ही आया नजर जिधर देखा।।

क्रमशः

महर्षि दयानन्द का आशावाद

डॉ. भवानीलाल भारतीय

स्थान : अमृतसर
समय : 1878 ई.

स्वामी जी दृढ़ आशावादी थे। निराशा को वे अपने पास फटकने नहीं देते थे। एक दिन पं. पोलहोराम नामक एक भक्त ने अत्यन्त नैराश्यभाव से आर्यसमाजियों की नगण्य संख्या का उल्लेख किया, तो महाराज ने उन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा कि यदि हम दृढ़ मनस्क होकर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हो जावें, सहस्रों व्यक्तियों को वेद–मत का अनुयायी बना सकते हैं। उन्होंने स्वयं का ही दृष्टान्त देते हुए कहा कि जब वे कार्यक्षेत्र में अवतरित हुए थे, तब तो अकेले ही थे। आज ईश्वरीय अनुकम्पा से सैंकड़ों हज़ारों सहयोगी उनके साथ हैं। यह भी कहा कि स्वामी विशुद्धानन्द एवं बालशास्त्री {जो 1869 में आयोजित प्रसिद्ध काशी शास्त्रार्थ में स्वामी जी के प्रमुख प्रतिद्वंद्वी पण्डित थे,} जैसे संस्कृतज्ञ तथा शास्त्रवेत्ता उनका साथ दें, तो तीनों मिलकर समस्त भूमण्डल पर वैदिक विचारधारा का प्रचार कर सकते हैं। पुनः शोक व्यक्त करते हुए कहा कि बिना मेरे हार्दिक भावों को जाने ये विद्वान् मेरा विरोध करने लगे हुए हैं। महाराज के इस कथन में जितनी वेदना थी, उतनी ही सच्चाई भी। न केवल समकालीन विद्वानों ने ही उनके दर्द को नहीं समझा, अपितु पश्चात्वर्ती इतिहासकार तथा समीक्षक भी दयानन्द के लक्ष्यों, उद्देश्यों तथा जीवन–दर्शन को कहाँ समझ सके हैं ?

{स्रोत : नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती, प्रथम अजमेरीय संस्करण, पृष्ठ 323, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा}

हमारा बनाने वाला

● स्व. गंगाप्रसाद उपाध्याय

गतांक से आगे...

हम पहले कह चुके हैं कि संसार के सभी कार्यों के केवल दो भाग हो सकते हैं एक वह जिनका बनाने वाला नास्तिकों और आस्तिकों दोनों को स्वीकार है जैसे मेज, कुर्सी आदि, दूसरे वह जिसमें मतभेद है। इनसे अतिरिक्त तीसरा कोई भाग ही नहीं। यहाँ तर्कशास्त्र के अनुसार पहले प्रकार के कार्य तो 'दृष्टान्त' कोटि में आ सकते हैं दूसरे नहीं। क्योंकि यह नियम है कि–

लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थेबुद्धि साम्यं सः दृष्टान्तः (न्याय दर्शन)

दृष्टान्त वही हो सकता है जिसको दोनों पक्षवाले स्वीकार कर सकते हैं। यदि पहले प्रकार के कार्यों को दृष्टान्त माना जाए तो दूसरे प्रकार के कार्यों के लिए भी जो कि साध्य कोटि में हैं एक निर्माता मानना पड़ेगा। 'साध्य कोटि' के किसी कार्य को दृष्टान्त नहीं माना जा सकता क्योंकि वह साध्य कोटि में हैं। इनसे बाहर ऐसा कोई कार्य नहीं मिलता जो बिना कर्त्ता के हो सके इसलिए सिद्ध है कि सृष्टि का बनाने वाला कोई है अवश्य इसी को हम लोग ईश्वर कहते हैं।

(आक्षेप) ईश्वर की सिद्धि किसी प्रमाण से नहीं होती, प्रत्यक्ष तो ईश्वर है नहीं। इसको आस्तिक भी मानते हैं। किसी ने ईश्वर को सूर्य या चाँद बनाते नहीं देखा। जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान, उपमान, शब्द आदि भी नहीं घट सकते क्योंकि इन सबका आश्रय प्रत्यक्ष पर है।

(उत्तर) यह युक्ति ठीक नहीं। यहाँ दो बातें याद रखनी चाहिएँ। पहली तो यह का विशेष को देखकर कारण विशेष का उसी समय अनुमान करते हैं जब उस कारण से कार्य होना पहले प्रत्यक्ष हो चुका हो। दूसरी यह कि अनुमान प्रमाण का प्रयोग वहीं होता है जहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण का प्रयोग न हो सकता हो।

आक्षेप करने वाले ने दूसरी बात पर ध्यान नहीं दिया। यदि संसार की सभी वस्तुएँ प्रत्यक्ष हुआ करतीं तो अनुमान आदि की आवश्यकता न पड़ती और केवल प्रत्यक्ष ही प्रमाण होता। कल्पना कीजिए कि एक बालक है, उसके माता–पिता को जनते नहीं देखा। अनुमान प्रमाण से यह नतीजा निकलता है कि उसके कोई न कोई माँ–बाप अवश्य होंगे क्योंकि इस बात का प्रत्यक्ष हो चुका है कि माँ–बाप द्वारा ही बालक की उत्पत्ति होती है बिना इनके नहीं। यदि यह प्रत्यक्ष न होता तो अनुमान न लगा सकते और यदि इस बालक के माता–पिता का प्रत्यक्ष होता तो भी अनुमान न लगाते। इसी प्रकार यह तो प्रत्यक्ष हो चुका है कि बिना निमित्त के कार्य नहीं होता। सूर्य चाँद, पृथ्वी, मनुष्य का शरीर आदि कार्य हैं अतः यही अनुमान होता है कि इनका निमित्त भी कोई है। ऐसा अनुमान करने में उक्त दोष कदापि नहीं आ सकता।

(प्रश्न) बढ़ई को तो मेज बनाते देखते हैं परन्तु ईश्वर को पर्वत नदी बनाते नहीं देखते फिर कैसे मान लें ?

(उत्तर) हम ऊपर कह चुके हैं कि अनुमान प्रमाण है ही उन अवस्थाओं के लिए जहाँ प्रत्यक्ष नहीं होता। इसलिए अनुमान प्रमाण से ईश्वर को मान लो। कभी–कभी तो बढ़ई को भी नहीं देखते फिर भी उसका अनुमान कर लेते हो। इंजन के भीतर बैठे हुए ड्राइवर को नहीं देखते तो भी इंजन के चलते और गाड़ियों के खींचने से ड्राइवर का अनुमान कर लेते हैं। इसी प्रकार जब हम समस्त सृष्टि रूपी इंजन की गति का प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में प्रत्यक्ष करते हैं तो उस ड्राइवर के मानने में क्या दोष आता है जिसके द्वारा यह गति हो रही है ?

(प्रश्न) अच्छा अगर मान लें कि सृष्टि को बनाने वाली कोई अदृष्ट शक्ति है तो इसके अन्य गुणों का कैसे पता चलाते हो ?

(उत्तर) सृष्टि को देखकर। पुस्तक को देखकर पुस्तक के रचयिता की योग्यता मालूम होती है। कल को देखकर कल के बनाने वाले के गुण मालूम होते हैं। इसी प्रकार सृष्टि को देख कर सृष्टिकर्त्ता के गुण मालूम होते हैं। जैसे समस्त सृष्टि में नियमों की एकता मालूम होती है इसलिए सृष्टि का नियन्ता एक ही है, अनेक नहीं। (2) सृष्टि बहुत बड़ी है। इसलिए ईश्वर भी महान् है। (3) सृष्टि स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म है इसलिए ईश्वर सूक्ष्मतम सृष्टि से भी सूक्ष्म और इसलिए निराकार है (4) सृष्टि ज्ञान से परिपूर्ण है इसलिए ईश्वर सर्वज्ञ है। (5) सृष्टि प्राणियों के हित के लिए है इसलिए ईश्वर हितकारी है।

(प्रश्न) ईश्वर ने हम को अज्ञानी क्यों बनाया? वह हमें इन वस्तुओं का दुरुपयोग क्यों करने देता है ?

(उत्तर) ईश्वर दुरुपयोग नहीं कराता, हम स्वयं दुरुपयोग करते हैं। ईश्वर ने हमें स्वतंत्र छोड़ा हुआ है।

(प्रश्न) ईश्वर ने हमको स्वतंत्र क्यों छोड़ा है ?

(उत्तर) हमारी उन्नति इसी में है कि हम स्वतंत्र रहें। यदि हर एक बात में हम परतंत्र हों तो हम को सुख भी किस बात का मिलेगा। जो अध्यापक प्रत्येक प्रश्न का उत्तर अपने शिष्यों को स्वयं ही लिखवा देता है वह उनकी प्रशंसा भी क्या करेगा ? क्योंकि इसका यश अध्यापक को है न कि शिष्यों को। शिष्य तभी यशस्वी हो सकते हैं जब उनको उत्तर लिखने में स्वतन्त्रता हो और वे अपनी बुद्धि लगा सकें। यदि जीवों को स्वतन्त्रता न दी जाए तो प्रत्येक काम ईश्वर की प्रेरणा से होगा और जीव जड़ पदार्थों के समान निर्जीववत् हो जाएँगे। क्या तुम ऐसी अवस्था को पसन्द करोगे ? कदापि नहीं।

(प्रश्न) सान्त अर्थात् अन्त वाली सृष्टि को देखकर अनन्त ईश्वर का अनुमान क्यों करते हो।

(उत्तर) अनन्त उसको कहते हैं जिसका अन्त न हो। कारण हमेशा कार्य से महान होता है। जिसने घड़ी बनाई है उसकी बुद्धि उस बुद्धि से कहीं अधिक होगी जो घड़ी बनाने के लिए चाहिए। हम सृष्टि के छोटे–छोटे भागों को तो देख सकते हैं परन्तु समस्त सृष्टि को नहीं। इसलिए सृष्टि हमारे लिए बहुत बड़ी है। ईश्वर सृष्टि से भी बड़ा होने से अनन्त है।

(प्रश्न) जैसे घड़ी बनाने वाला बड़ी से बाहर होता है उसमें व्यापक नहीं होता, इसी प्रकार ईश्वर को भी सृष्टि से अलग होना चाहिए।

(उत्तर) क्रिया वहीं हो सकती है जहाँ कर्त्ता हो। घड़ी बनाने का अर्थ यह है कि कुछ पुर्ज़ों को लेकर आपस में एक नियम से जोड़ देना। 'जोड़ने' रूपी क्रिया के समय घड़ीसाज घड़ी के पास होता है। घड़ीसाज घड़ी के केवल एक अंश का बनानेवाला है और उस अंश तक उसका और घड़ी का साथ है। घड़ी के पुर्ज़े जिस लोहे के बने हैं उस लोहे के परमाणुओं का विशेष नियम से रखना घड़ीसाज़ का काम नहीं इसलिए उस काम के लिए घड़ीसाज़ को घड़ी के पास रहने की ज़रुरत नहीं परन्तु ईश्वर की सृष्टि में क्रियाएँ निरन्तर होती रहती हैं। कहीं संयोग रूपी, कहीं वियोग रूपी और कहीं दोनों तरह की हैं, इसलिए ईश्वर भी उन क्रियाओं के साथ होने से सर्वव्यापक है जैसे जाला तानने और सिकोड़ने वाली मकड़ी अपने शरीर में ही व्यापक रहती है। इसी प्रकार ईश्वर है। घड़ी में वस्तुतः दो प्रकार की क्रियाएँ हैं, एक वह जो धातु अर्थात् लोहे के परमाणुओं से सम्बन्ध रखती हैं और दूसरी पुर्ज़ों से। पुर्ज़े की क्रिया का सम्बन्ध घड़ीसाज़ से है और लोहे के परमाणुओं की क्रियाओं का ईश्वर से। यदि लोहे के परमाणु नियम विशेष से कार्य करना छोड़ दें तो पुर्जों के ठीक होते हुए भी घड़ी न चले। वस्तुतः घड़ीसाज़ की घड़ी उन क्रियाओं के ज़ोर पर चलती है जो ईश्वर द्वारा निरन्तर हुआ करती हैं। जब ईश्वर की क्रियाएँ प्रत्येक देश और काल में निरन्तर होती रहती हैं तो ईश्वर को सर्वव्यापक ही होना चाहिए।

(प्रश्न) बहुत लोग ईश्वर को निष्क्रिय अर्थात् क्रिया रहित मानते हैं और बहुत से कहते हैं कि ईश्वर के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। ये परस्पर विरुद्ध बातें हैं। कौन–सी ठीक है और कौन–सी गलत

(उत्तर) दोनों ग़लत हैं। ईश्वर को निष्क्रिय मानना ईश्वर के अस्तित्व का निषेध करना है क्योंकि ईश्वर के कामों से ही तो हम ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं। निष्क्रिय ईश्वर को न कर्त्ता कह सकते हैं, न ही कर्मों में जो कुछ होता है वह सब ईश्वर ही करता है क्योंकि मनुष्य तथा अन्य प्राणी भी बहुत से काम करते हैं जैसे ईश्वर मेज़ नहीं बनाता, न ईश्वर झूठ बोलता या

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

दृष्टान्त वही हो सकता है जिसको दोनों पक्षवाले स्वीकार कर सकते हैं। यदि पहले प्रकार के कार्यों को दृष्टान्त माना जाए तो दूसरे प्रकार के कार्यों के लिए भी जो कि साध्य कोटि में हैं एक निर्माता मानना पड़ेगा। 'साध्य कोटि' के किसी कार्य को दृष्टान्त नहीं माना जा सकता क्योंकि वह साध्य कोटि में हैं। इनसे बाहर ऐसा कोई कार्य नहीं मिलता जो बिना कर्त्ता के हो सके इसलिए सिद्ध है कि सृष्टि का बनाने वाला कोई है अवश्य इसी को हम लोग ईश्वर कहते हैं।

वेद-व्योम से झरता गीता का मानवोदय पंचामृत

● देव नारायण भारद्वाज

एक फकीर के पास कुछ लोग पहुँचे, बताया यहाँ पर दो देशों की टीमें खेल रही हैं। एक का नाम 'भा' दूसरी का नाम 'पा' है, बताइए कौन सी टीम जीतेगी? फकीर सोच ही रहे थे कि इन्हीं लोगों में से किसी ने कह दिया– क्या 'भा' टीम जीतेगी, फकीर ने भी हामी भरते हुए कह दिया तुम ठीक कह रहे हो। थोड़ी ही देर लगी थी कि किसी दूसरे व्यक्ति ने कह दिया नहीं–नहीं 'पा' टीम जीतेगी। फकीर ने कहा कि तुम ठीक कह रहे हो। तभी तीसरा व्यक्ति बोल पड़ा – फकीर महोदय ऐसा कैसे हो सकता है कि 'भा' भी जीते– और 'पा' भी जीते, जीतेगी तो कोई एक ही टीम। फकीर महोदय ने मुस्कान साथ उत्तर दिया– तुम ठीक कह रहे हो और मौन हो गए।

आजकल देश की सरकार ऐसे ही किसी फकीर की लकीर पर चलती दिखाई दे रही है। गली–मोहल्ला, बाजार हो या सरकार का दरबार हो, सभी स्थलों पर नए–नए अपराध–अत्याचार होते जा रहे हैं। जिन्हें देख–सुनकर प्रजा में त्राहि–त्राहि मच जाती है। सत्ताधारी या सत्ताभिलाषी नेता लोग रोते–बिलखते पीड़ित परिवार की ओर दौड़ लगाते जाते हैं और आर्थिक सहायता का आश्वासन देकर लौट आते हैं। यह तो रही भुक्त भोगी संत्रस्त लोगों के प्रति 'हाँ'। और अपराधी–अत्याचारी दण्ड से बचते रहते हैं, पकड़ में नहीं आते, आते हैं तो बच जाते हैं, यह हुई उनके प्रति 'हाँ'।

सरकार का विशाल तंत्र होते हुए भी वह अपराधियों को दण्डित नहीं कर पाती है क्योंकि जो दण्डाधिकारी होते हैं – वे स्वयं दण्ड के अधिकारी होते हैं। घोषित अपराधियों से बढ़कर उनके स्वयं के अपराध–अत्याचार कहीं बढ़कर देखने में आते हैं। मन्त्रीगण, प्रशासकगण, राज–काजकर्त्ता, सम्विदायकगण सभी एक से एक बढ़कर भ्रष्टाचार में संलिप्त पाए जाते हैं। अपराधी भी अपने अनाचार –अत्याचार पर तब गर्व करते दिखाई देते हैं, जब उन्हें पकड़ने के लिए चौकीदार नहीं, सिपाही नहीं, दारोगा नहीं, उनके साथ वरिष्ठ आरक्षी अधीक्षक स्वयं उपस्थित होते हैं। अपराधों की सूची यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है। नित्यप्रति के अखबार एवं दूरदर्शन, घर–बाज़ार सर्वत्र उनको प्रत्यक्ष दिखाते रहते हैं। चोरी, डकैती, लूटमार से बढ़कर सूदखोरों की चढ़ाई से परिवार के परिवार आत्महत्या पर बाध्य होते देखे जाते हैं। बैंकों में बढ़ती असुविधा गरीब को सूदखोरों की सुविधा की ओर ढकेल देती है, जो परिवार को दुविधा में डाल देती है। सूदखोर ब्याज वृद्धि के साथ–साथ परिवार की युवतियों पर कुदृष्टि डालते हैं, उन्हें बचाने के लिए वे पुत्रियों सहित गंगा में समा जाते हैं। नरौरा की गंगाधारा में नन्हीं बेटियों सहित पिता को डूबते देखा गया।

युवती तो युवती अबोध बालिकाएँ भी बलात्कारियों की शिकार हो रही हैं। एक ओर धार्मिक बनकर कन्या पूजन किया जाता है। दुर्गा, लक्ष्मी, सीता, सावित्री की आराधना में व्रत–उपवास रखते हैं, दूसरी ओर उन्हें गर्भ, गोद या गृह में ही मारने को तैयार हो जाते हैं। भागवत की कथाएं चटकारे लेकर सुनते रहते हैं, किन्तु साक्षात भगवती की व्यथाएं ही नहीं हत्याएँ भी बढ़ाते रहते हैं। इसके दुष्परिणाम को श्रीमद् भगवद्गीता (16.27–28) में दर्पण की भाँति प्रदर्शित किया गया है। यथा–

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।।

भावार्थ – यज्ञ, तप, दान और अन्य समस्त कर्म यदि तुम परमात्मा को समर्पित करके अन्तःकरण की शुद्धता और सभ्यता के साथ करते हो तो तुम जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य–मोक्ष, शाश्वत आनन्द प्राप्त करोगे। ब्रह्म के लिए और ब्रह्म के नाम ओ३म् को लक्ष्य कर यदि तुम कर्म करते हो तो तुम पर परमात्मा की परम शान्ति और पूर्णत्व की वृष्टि होगी। इनके निमित्त किया गया पुरुषार्थ सत्कर्म कहलाता है, इसके विपरीत–

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।।

भावार्थ :– बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान और किया हुआ तप 'असत्' कहलाते हैं। इसलिए हे अर्जुन! ये न तो इस लोक में न ही मरणोपरान्त फल देने वाले हैं। ये क्रियाएँ उतनी ही व्यर्थ होंगी, जितनी कि पर्वतीय प्रदेश में चट्टानों पर गिरती वर्षा की बूँदें अथवा भस्मीभूत अग्नि में डाली गयी घृत आहुतियाँ। बिना श्रद्धा के मनुष्य अहंकारी व दम्भी बन जाता है। उसका हृदय कठोर हो जाता है। बिना श्रद्धा के शत–शत यज्ञ भी क्यों न किए जाएँ और ईश्वर के समर्पण भाव से क्यों न हो, समस्त विश्व की सम्पदा भी यदि बिना श्रद्धा और समर्पण भाव के दान कर दी जाए, इसका कोई मूल्य नहीं होगा। (संदर्भ दृष्टव्य श्रीमद्भागवतगीता भाष्य श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती – अनुवाद द्वारा विदुषी श्रीमती गुलशन सचदेव)। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्ववसुधा के सुख सौहार्द के लिए आचार्य चाणक्य इस यज्ञ विधान को अनिवार्य मानते थे। हवन होम से ही घर, घर बनता है, इसी से देव पूजा, संगतिकरण एवं दान की त्रिवेणी बहती है इसलिए तो ***होम*** शब्द अंग्रेज़ी के शब्द कोष में जाकर 'घर' का पर्यायवाची बन गया। आचार्य चाणक्य किंचित् आक्रोश में आकर कहते हैं–

न विप्र पादकोदक कर्दमानि
न वेद शास्त्र ध्वनि गर्जतानि।
स्वाहा–स्वधाकार विवर्जतानि
श्मशान तुल्यानि गृहाणि तानि।।

आचार्य चाणक्य की इस कठोरता को कोमलता में तभी बदला जा सकता है, जब घर–घर में उनके आदेश का परिपालन इस रूप में हो–

स विप्रपादोदक कर्दमानि
स वेदशास्त्र ध्वनि गर्जतानि।
स्वाहा स्वधाकार संयुतानि
स्वर्गेण तुल्यानि गृहाणि तानि।।

सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मनुस्मृति के संदर्भ से बताया है कि स्त्री की प्रसन्नता से सब कुल प्रसन्न और उसकी अप्रसन्नता से सब दुःखमय हो जाता है। **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"** श्लोक की इस प्रथम पंक्ति को खूब दोहराया जाता है– अर्थात् जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष हो के देव संज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं। श्लोक को दूसरी पंक्ति पर गहन ध्यान नहीं दिया जाता है। **"यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रिया।"** जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। बात सत्कार न होने तक सीमित नहीं है, वह तो दुत्कार, तिरस्कार, हत्याकार तक पहुँचती रहती है। व्यक्ति ने यदि अपना परिवार ही बिगाड़ लिया, तो समाज, राष्ट्र एवं **"वसुधैवकुटुम्बकम्"** का निर्माण नितान्त असंभव है।

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व मानवोदय के पाँच सोपान हैं। आकार, प्रकार, रूप, रंग एवं वचन से कोई प्राणी मनुष्य लगता है, पर वास्तव में यह उसका संक्रमणीय स्वरूप है, वह मानव, दानव या देव कुछ भी हो सकता है। दानव अपने अहंकार की मदहोशी के सागर में डूबे रहने के कारण तथा देवतागण अपनी भोग लिप्सा के आकाश पर उड़ते रहने के कारण मानवता के हरे–भरे सुरभित धरातल से वंचित रहते हैं। यह मानव ही है जो अपने दुश्चरित्र के बोझ से भारी होकर अपयश के समुद्र में डूब जाते हैं या फिर अपने सच्चरित्र की बातास से हल्के होकर आसमान की ऊँचाई को प्राप्त कर लेते हैं क्योंकि वे अपने सदाचरण की वसुन्धरा पर सदैव अडिग बने रहते हैं। इस मानव देहधारी प्राणी को अवमानना के अधः पतन से बचाकर कीर्तिकामना का सिरमौर बनाने के लिए भगवती गीता के मानवोदय पंचामृतम् का रसपान उपयोगी है। (देखिए गीता अध्याय 18 श्लोक संख्या 14–15)

अधिष्ठानं तथा कर्ता करण च पृथग्विधम्।
विविधाच पृथश्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।।
शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्यायं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः।।

अधिष्ठान – अर्थात् शरीर, पद या स्थानीय परिस्थिति, **कर्त्तापन,** पृथक् पृथक् प्रकार के साधन, नाना प्रकार की विभिन्न चेष्टाएँ, तथा इस प्रसंग में **देव**–जन्म जन्मान्तर में पूर्वकृत कर्मों के फल का प्रभाव–मनुष्य शरीर, वाणी तथा मन से न्यायानुकूल अथवा न्याय विरुद्ध जो भी कार्य प्रारम्भ करता है, उसके ये पाँच कारण होते हैं। मनुष्य अपनी योग्यता व परिश्रम से इन कारणों को अपने अनुकूल करके उच्च पद पर जा पहुँचता है। उसके अधीन आज्ञा पालन के लिए अनेक कर्मचारी होते हैं। वह उन पर निर्भर रहकर स्वयं कुछ नहीं करता है तो असफल हो जाता है। वह पदच्युत भले न हो, किन्तु अपयश का शिकार अवश्य बन जाता है। जो अपना कर्त्तापन बनाए रखता है, अपने उपकरणों का प्रयोग करता रहता है, तो वे उपकरण या यन्त्र उसके नियंत्रण में रहते हैं। जैसे शरीर में स्थापित अन्तःकरण एवं बाह्मकरण, सदुपयोग से सबल बने रहते हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ एवं कर्मेन्द्रियाँ निष्क्रिय छोड़ देने पर व्यर्थ हो जाती हैं और क्रियाशील बनाए रहने पर विभिन्न चेष्टाओं में सहायक बनी रहती हैं।

"करत करत अभ्यास से जड़मत होत सुजान" की कहावत चरितार्थ हो उठती है। इस प्रकार मनुष्य शरीर–मन–वाणी से उचित व अनुचित जो भी कृत्य करते हैं उसके लिए यही पाँचों बिन्दु उत्तरदायी होते हैं।

मिलिए पुस्तकालय विज्ञान में स्वर्ण पदक प्राप्त तमिलनाडु के कल्याणसुन्दरम्

शेष पृष्ठ 07 पर ☞

वेदों में नारी की स्थिति

● शिवनारायण उपाध्याय

गर्भ स्थिति से दूसरे अथवा तीसरे महीने में पुंसवन संस्कार किया जाता है। संस्कार हेतु किए यज्ञ में दो विशेष आहुतियाँ दी जाती हैं। जिन दो मंत्रों से आहुतियाँ दी जाती हैं, उनमें से पहला मंत्र है–

ओ३म् आ ते गर्भो योनिमेतु
पुमान् बाण इवेषुधिम्।
आ वीरो जायतां पुत्रस्ते दशमास्यः स्वाहा।।

इस मंत्र में आशा की जा रही है कि गर्भिणी नारी दस माह में एक वीर पुत्र को जन्म देगी। इसका अर्थ तो यह हुआ कि आर्य लोग सदैव पुत्र जन्म की ही कामना करते थे। पुत्री के जन्म की वे कभी भी कामना नहीं करते थे। क्या वेद में स्त्री को पुरूष से हीन माना गया है ? इस समस्या का हल मुझे तब मिला जब मैं सामवेद पर काम कर रहा था। सामवेद मंत्र संख्या 1460 जो ऋग्वेद 7.96.4 में भी आया है निम्नांकित है–

जनीयन्तोः न्वग्रवःपुत्रीयन्तः सुदानवः।
सरस्वन्तं हवामहे।।

इस मंत्र के ऋषि वसिष्ठ हैं। वसिष्ठ ने विवाह के समय पत्नी का हाथ थामते हुए कहा था **'त्वया वयं धारा उदन्या इव अति गाहे महि द्विवः'** तेरे साथ मिलकर हम अप्रीति कर दुर्गुणों को ऐसे तैर जाएँ जैसे पर्वतीय धाराओं को हाथ पकड़ कर हम पार करते हैं। मंत्र का अर्थ–ऋषि ने **(जनीयन्तः)** पत्नी की कामना की परन्तु केवल इसलिए कि **(नु)** अब वे **(अग्रवः)** आगे बढ़ सकेंगे। इस संसार सागर को पार करना अति कठिन है परन्तु पति–पत्नी मिलकर इसे पार करने में समर्थ हो सकते हैं। उन्होंने **(पुत्रीयन्तः)** सन्तान **(पुत्री)** को भी चाहा, पर केवल **(सुदानवः)** इस भावना से कि अपने **(सु)** उत्तमांश को **(दानवः)** लोक हित के लिए अपने पीछे छोड़ जाएँ। **(सरस्वन्तम् हवामहे)** ज्ञान के सागर परमात्मा को हम सदा पुकारते हैं। पण्डित तुलसीराम ने अपने सामवेद के भाष्य में इस मंत्र का भाष्य करने के अनन्तर लिखा है– सामश्रमीजी कहते हैं कि विवरण के मत में यह एक ऋचा का सूक्त नहीं है किन्तु दो ऋचाओं का प्रगाथ है। अब दूसरी ऋचा पर विचार करते हैं–

उत नः प्रिया प्रियायु सप्त स्वसा सुजुष्टाः।
सरस्वती स्तोम्या भूत।

सामवेद मंत्र संख्या 1461

इस ऋचा में सुख लेने वाली, मनोहर सर्वप्रिय सरस्वती का वर्णन है जो सात बहिनों पाँच प्राण, मन और बुद्धि के समान स्तुति करने के योग्य है। इससे तो यही सिद्ध होता है कि पूर्व मंत्र में एक सुलक्षणा कन्या की ही कामना की गई है। वास्तव में वेदों में स्त्री और पुरुष में से किसी को यदि दूसरे से श्रेष्ठ बताया गया है तो वह स्त्री ही है। वास्तव में तो ये एक दूसरे के पूरक है। परमात्मा को तो संसार का माता और पिता दोनों माना गया है।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अथाते सुम्नमीमहे।।

वेदों में धर्मशास्त्रों के अध्ययन एवं शिक्षा प्राप्त करने का सभी को समान अधिकार यजुर्वेद अध्याय 26 मंत्र 2 द्वारा दिया गया है।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानी जनेभ्यः।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय
चार्याय चस्वाय चारणाय च।

यजुर्वेद अध्याय 7 मंत्र संख्या 33 के भावार्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखते हैं–

'सब विद्वानों और विदुषी स्त्रियों की योग्यता है कि समस्त बालक और बालिकाओं के लिए निरन्तर विद्या दान करें। राजा और धनी पुरुष इन लोगों के लिए धनादि से इनकी आजीविका की व्यवस्था करें।'

वेदों में स्त्रीशिक्षा पर इतना अधिक बल दिया गया है कि विद्या और वाणी की दात्री देवी सरस्वती को माना गया है। इतना ही नहीं वेद मंत्रों की ऋषिकाएँ हैं जिनमें सरस्वती घोषा, अपाला, सर्पराज्ञी, सूर्या सावित्री, अदिति दाक्षायणी आदि 33 ऋषिकाओं के नाम महत्वपूर्ण हैं।

वैदिक संस्कृति में कन्या को परिवार पर बोझ न मानकर परिवार का धन माना गया है। विवाह के अवसर पर कन्या का पिता कहता है–

सोम जुष्टं ब्रह्मजुष्टमर्यम्ना संभृतं भगम्।
धातुर्देवस्थ सत्येन कृणोमि पति वेदनम्।।

अथर्व. 2.36.2

इसी प्रकार अथर्ववेद 2.36.6 में कहा गया है–**'आ कृन्दय धनपते वरमामनसं कृणु'** हे **(धनपते)** कन्या रूप धन के पिता। आप **(वरम्)** वर व **(आक्रन्दय)** आदर पूर्वक आमंत्रित कीजिए। उसे उचित व्यवहार से **(आमनसम)** अनुकूल मन वाला **(कृणु)** कीजिए।

कन्या को स्वयंवर विधि से कई योग्य युवाओं में से एक को अपने जीवन साथी (पति) के रूप में चुनने का अधिकार है, यह अधिकार युवाओं को प्राप्त नहीं है सभी जानते हैं कि चुनने वाले की स्थिति चुना जाने वाले से ऊँची होती है। युवती अपने वर में किन गुणों का होना आवश्यक मानती है इस पर भी वेदों में कई मंत्र आए हैं। यहाँ हम केवल दो मंत्र दे रहे हैं।

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि
चनाधाश्चनोधाऽअसि चनोमयिधेहि।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय
देवाय त्वा सावित्रे।। यजु. 8.7

कन्या वर से कहती है, कि आप उपासना के द्वारा यम–नियमों के धारक हो। आप सविता देव के उपासक हो अर्थात् आपका जीवन नियमित है। आप निश्चय से उत्तम अन्न के धारण करने वाले हो। मुझमें अन्न को धारण कीजिए। आप अपनी आय में से यज्ञ (परोपकार, श्रेष्ठ कर्म) में भी व्यय करते हैं। प्रभु यज्ञपति हैं, मैं आपको ऐश्वर्य के लिए प्राप्त होती हूँ। मैं आपको दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए स्वीकार करती हूँ, मैं उत्तम संतान को जन्म देने के लिए स्वीकार करती हूँ।

इस मंत्र में वर में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शौच सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, जीविकोपार्जन में सफलता तथा परोपकार की भावना आदि गुणों को बताया गया है।

उपयामं गृहीतोऽस्यादि तेभ्यस्त्वा।
विष्णुऽउरूगायैष ते सोमस्तं
रक्षस्वमात्वा दभन्।। यजु. 8.1

वधू कहती है– आपका जीवन प्रभु की उपासना द्वारा यम नियमों से स्वीकृत हुआ है। मैं सूर्य के समान संतानों के लिए आपको वरती हूँ। आप विष्णु हैं अर्थात् आपका मन विशाल है, आपमें कृपणता नहीं है, आप प्रभु का बहुत ही गायन करते हैं। यह आपकी सोम शक्ति है, इसकी आपको रक्षा करनी है। मैं चाहती हूँ कि आपको रोगादि पीड़ित न करें।

वैसे वर भी वधू के अन्दर कुछ गुणों की खोज करता है, उनका भी वेदों में वर्णन है। यहाँ वधू के गुणों पर संक्षेप में लिखते हैं।

राज्ञ्यसिप्राचीदिग्विराडसि दक्षिणा दिक्
सम्राडसि प्रतीची दिक्।
स्वराडस्युदीची दिगधि पत्न्यसि बृहती दिक्।

यजु. 14.13

हे वधू। तू **(राज्ञी असि)** शरीर से स्वास्थ्य की दीप्तिवाली है। मन में भक्ति की दीप्तिवाली तथा मस्तिष्क में ज्ञान की दीप्तिवाली है। इसी से **(प्राची दिक्)** तेरी दिशा आगे बढ़ने की बनी है। तू अपने कार्य में अत्यन्त कुशल हो गई है। तू **(विराट् असि)** विशेष रूप से दीप्त हुई है क्योंकि तू अपने कार्य को अप्रमाद तथा गम्भीरता से करती है। इसी से **(दक्षिणादिक)** तेरी दिशा दक्षिण की हुई है। तू अपने कार्य में अत्यन्त कुशल हो गई है। **(सम्राट् असि)** तू घर पर उत्तम शासन करने वाली है, सारे घर को व्यवस्थित ढंग से चलाती है। **(प्रतीचीदिक)** तू इन्द्रियों का पत्याहरण करने वाली बनी है। **(स्वराट् असि)** तू अपना शासन करने वाली बनी है। **(अधि पत्नी असि)** तू घर की अधिष्ठान रूपेण रक्षिका है। तू घर की सर्वोन्मुखी उन्नति करने में प्रवृत्त है।

यंत्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवाऽसि धरित्री।
ईषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।।

यजु. 14.22

अर्थ–तू अपने जीवन पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाली है। इसी का परिणाम है कि तू चमकती है, सबको नियमित जीवन वाला बनाती है, तू पृथ्वी के समान अडिग है, सबका धारण और पोषण करने वाली है, वर के मुँह से इतना सुनने पर वधु कहती है कि मैं तुझको अपना जीवन साथी बनाती हूँ। अन्न की प्राप्ति के लिए मैं आपको वरती हूँ। हमारा जीवन बल और शक्ति सम्पन्न बने। मैंने आपका वरण इसलिए किया है कि आप गृह कार्य के लिए धनार्जन करने वाले होंगे। सबका पोषण करने के लिए मैंने आपका वरण किया है। फिर वर कहता है–

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ।।

यजु. 6.25

अर्थ–तुझे मैं अपना जीवन साथी बना रहा हूँ, तुझसे यह सम्बन्ध मैं हृदय के लिए बना रहा हूँ मैं तुझको मन के लिए स्वर्ग निर्माण करने के लिए बना रहा सबका पालन करने वाले इस यज्ञ **(गृहाश्रम)** को तुम सबसे ऊपर स्थापित करने स्वर्ग के निमित्त तथा दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए हवियों **(धनादि)** को देना। विवाह हो जाते ही यज्ञ मण्डप में आकर वर–वधू घोषणा करते हैं।

समंजन्तु विश्वे देवा समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा संधाता समु देष्टी दधातु नौ।।

ऋ.10.85.47

अर्थ–हे समस्त विद्वत् जन। आप अच्छी प्रकार जानिए कि हम पति–पत्नी दोनों पानी के समान एक हैं। हृदयस्थ वायु हम दोनों को एक हृदय के समान करे, सूर्य समान करे, सरस्वती भी हम दोनों का हृदय समान कर दे।

वर कहता है –

भगस्ते हस्तम ग्रहीत सविता हस्तम ग्रहीत।
पत्नी त्वमसि धर्मेणाहं गृहपतिस्तव।।

अथर्व. 14.1.51

ऐश्वर्यवान् परमात्मा ने तेरा हाथ पकड़ा है। धर्म से तू मेरी पत्नी है और मैं तेरा गृह पति हूँ। मण्डप में ही वधू

वर से कहती है–

अहं वदामि नेत् त्वम् सभायामह त्वं वद।
ममेदसस्त्वं केवलो नान्यासां कीर्तया श्चन।

अथर्व .7.38.4

अर्थ–**(अहम्)** मैं **(न इत्)** अभी **(वदामि)** बोल रही हूँ। **(त्वम्–त्वम्)** तू, तू **(अह)** भी **(सभायाम)** सभा में बोल। **(त्वम्)** तू **(केवलः)** केवल **(मन इत्)** मेरा ही है **(चन)** और **(अन्यासाम्)** दूसरी स्त्रियों का **(न कीर्तयाः)** तू ध्यान न कर।

कन्या कभी रिक्त हस्त नहीं रहे इसीलिए कन्या का पिता कन्या को दहेज के रूपए कुछ वस्त्राभूषण और नकद धन देता है। बारातियों के लिए रास्ते में खाने के कुछ पकवान भी देता है।

इदं हिरण्यं गुल्गुल्वयमौ क्षो अथो मगः।
एते पतिभ्यस्त्वामदुः अतिकामाय वेत्त वे।।

अथर्व. 2.36.7

अर्थ–यह स्वर्ण और गुलगुले और यह महात्माओं के योग्य ऐश्वर्य है। कन्या पक्ष वालों ने पति पक्षवालों के लिए तुझे प्रतिज्ञा पूर्वक कामना योग्य पति लिए लाभ पहुँचाने के लिए दिया है। विवाह के बाद वधू पर गृहस्थी को ठीक तरह से चलाने का उत्तरदायित्व आ जाता है। इस पर वेद कहता है–

भगस्य नावमारोह पूर्णामनु पदस्वतीम्।
तयोपप्रतार यो वरः प्रतिकाम्यं।।

अथर्व. 2.36.5

हे वधू ! **(भगस्य)** ऐश्वर्य की **(पूर्णाम्)** भरी भराई और **(अनुपद स्वतीम्)** अटूट **(नावम्)** नाव पर **(आ रोह)** तू चढ़ और **(तया)** इस **(नाव)** से **(अपने वर को)** **(उप प्रतारय)** आदर पूर्वक पार लगा। **(यः)** जो **(वरः)** वर **(प्रतिकाम्यः)** प्रतिज्ञा करके चाहने योग्य है।

आ क्रन्दय धनपते वरमामनसं कृणु।
सर्वं प्रदक्षिणं कृणु यो वरः प्रतिकाम्यः।।

अथर्व. 2.36.6.

अर्थ–**(धनपते)** हे धनों की रक्षा करने वाली कन्या **(वरम्)** वर को **(आ)** आदरपूर्वक **(क्रन्दय)** बुला और **(आमनसम्)** अपने मन के अनुकूल **(क्रणु)** कर। **(यः)** जो **(वर)** वर **(प्रतिकाम्यः)** प्रतिज्ञा पूर्वक चाहने योग्य है।

ऋ. 10.85.26 में कहा गया है वर वधू को उसके पितृगृह से आदरपूर्वक अपने गृह को ले जावे। पति गृह में पहुँचने पर वधू के सम्मान में एक यज्ञ आयोजित किया जाता है। यज्ञ में सभी सम्बन्धी लोग भाग लेते हैं। वधू को आशीर्वाद के साथ कुछ उपहार भी भेंट में देते हैं।

सुमंगलीरियं वधूरिमा समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्तं वि परेतन।।

ऋ. 10.85.33

अर्थ–**(इयम्)** यह वधू **(सुमङ्गली)** शुभ और सौभाग्यकारिणी है। **(सम आ इत)** आप लोग आइए **(पश्यत)** इसे देखिए। (अस्य) इसे **(सौभाग्यम्)** सौभाग्य का आशीर्वाद **(दत्वाय)** देकर **(अथ)** अनन्तर **(अस्तम्)** गृह को **(विपरेतन)** जाइए। वधू के सास–ससुर भी उसका स्वागत कर उसे उपहार देते हैं।

शते हिरण्यं शमु सन्त्वायः शं
मेथिर्भवतु युगस्य तद्मे।
शं त आप शत पवित्रा भवतु
शमुपत्या तन्वं सं स्पृशस्व।।

अथर्व 14.1.40

अर्थ– वधू। तेरे लिए स्वर्णाभूषण आदि सुखदायक हों और प्रजाएँ (सेवक आदि) शान्ति कारक होवें। पशु बाँधने का काष्ट दण्ड आनन्द प्रद और जुए का छिद्र शान्ति दायक होवें। तेरे लिए सैंकड़ों प्रकार के शुद्ध करने वाले जल सुखदायक होंवे। शान्ति के लिए ही पति के साथ अपने शरीर को संयुक्त कर। गृह कार्य में पति आदि सब वधू की सहायता करें।

शर्म वर्मेतदा हरास्यैनार्यां उपस्तरे।
सिनीवालि प्रजायतां भगस्य सुमतावसत्।।

अथर्व. 14.2.21

हे विद्वान्। **(एतत्)** यह **(गृह कार्यरूप)** **(शर्म)** सुखदायक **(वर्म)** कवच **(अस्यैनार्ये)** इस नारी को **(उपस्तरे)** ओढ़ने के लिए **(आ हर)** ला **(प्रजायताम्)** उत्तम सन्तान होवे और वह सन्तान **(भगस्य)** ऐश्वर्यवान् परमात्मा की **(सुमतौ)** सुमति में **(असत्)** रहे।

परिवार में स्त्री की स्थिति पर ऋग्वेद 10.85.46 में कहा गया है–

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रूवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अभि देवृषु।।

हे वधू। तू **(श्वशुरे)** श्वसुर के अधीन **(सम्राज्ञी)** सम्राज्ञी हो। **(श्वश्रूवां)** अपनी सास के अधीन **(सम्राज्ञी)** सम्राज्ञी **(भव)** हो। **(ननान्दरि)** ननदों मध्य **(सम्राज्ञी)** सम्राज्ञी **(भव)** हो और **(देवृषु)** देवरों के **(अधि)** बीच में **(सम्राज्ञी)** सम्राज्ञी **(भव)** हो यही भावना अथर्ववेद 14.1.44 के मंत्र में व्यक्त हुई है–

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञयुत देवृषु।
ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्ञयुत श्व श्र्वा।।

अथर्ववेद में इससे भी आगे जाकर कहा गया है कि गृहस्थाश्रम रूपी यज्ञ में स्त्री का स्थान ब्रह्मा का है। जैसे यज्ञ में ब्रह्मा ही मुख्य होता है तथा अध्वर्यु, होता, उद्गाता सभी को उसका आदेश मानना होता है, इसी प्रकार गृहस्थ में स्त्री का आदेश सभी को स्वीकार करना होता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्त्री को वेदों में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। चारों वेदों में लगभग 700 मंत्र स्त्री विषयक ही हैं।

लेखक की रचना
'वैदिक ऋषिकाएँ' से साभार

☞ पृष्ठ 05 का शेष

वेद-व्योम से झरता ...

से जो 35 वर्ष तक कला महाविद्यालय में पुस्तकालयाध्यक्ष रहे। अपना सम्पूर्ण वेतन गरीबों में दान कर दिया करते थे और अपने निर्वाह हेतु किसी छोटे से होटल में वेटर का काम करके मुट्ठीभर चावल व सांबर के लिए पैसे जुटा लिया करते थे। सेवा निवृत्त होने पर मिले दस लाख रुपए भी गरीबों की सहायतार्थ दान कर दिए। उनकी यह भी घोषणा है कि मरणोपरान्त उनके नेत्र व देह भी मेडिकल कॉलेज को छात्रों के क्रियात्मक अध्ययन हेतु दान कर दिए जाएँगे। कैंब्रिज के इन्टरनेशनल बायोग्राफिकल सेन्टर ने कल्याणसुन्दरम् को दुनियाँ के सबसे सज्जन व्यक्तियों की श्रेणी में रखा है। संयुक्त राष्ट्र ने उन्हें बीसवीं सदी के सर्वोत्कृष्ट लोगों की सूची में गिना है और अमेरिका की संस्था ने उन्हें सहस्त्राब्दी पुरुष ***(मैन ऑफ द मिलेनियम)*** के रूप में चुना है। कल्याणसुन्दरम् ने गीता के उपरोक्त संदेश के अनुसार अपने शरीर, कृतित्व, इन्द्रियों, चेष्टाओं एवं प्रारब्ध को अनूकूल करते हुए मानवीय कल्याण एवं आत्मीय सौन्दर्य के बल पर यथा नाम तथा गुण के अनुरूप स्वयं को सम्मान के शीर्ष पर पहुँचा दिया। **"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः"** (अथर्व 7.50.8) जिसका दायाँ हाथ कर्त्तव्य हेतु आगे बढ़ता रहता है, उसके लिए हर प्रकार की जीत बाएँ हाथ की मुट्ठी में आती रहती है, अन्यथा **"अकर्माः दस्युः"** (वेद) कर्महीन व्यक्ति देव से दस्यु बन जाता है। श्लोक में वर्णित करण – इन्द्रियाँ व अन्तः करण जब काम–क्रोध, लोभ–मोह, अहंकार के पंच गरल से ग्रसित हो जाते हैं, तब मनुष्य का पतन हो जाता है, वह पशु–पक्षी व अन्ध योनियों में चला जाता है। जब यही करण–उपकरण वेद प्रदत्त पंचामृत से परिपुष्ट हो जाते हैं तो मनुष्य को देवत्व, स्वर्ग या मोक्ष के प्रशस्त पथ पर अग्रसर कर देते हैं। (देखिए यजुर्वेद अध्याय 34 मंत्र सं. 11)

पंचनद्युः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पंचधा सौ देशेऽभवत्सरित्।।

अर्थात् शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ नदियाँ हैं, चक्षु से प्रवाहित होने वाली ज्ञान नदी रूप– जल से भरी है तो श्रोत से चलने वाली शब्द रूप जल से, नासिका से चलने वाली नदी घ्राण–प्राण रूप जल से, रसना से चलने वाली नदी वाक्–स्वाद रस रूप जल से, तथा त्वचा से चलने वाली नदी स्पर्श रूप जल से प्रवाहित हो रही है। एक–एक ज्ञानेन्द्रिय से, एक–एक विषय का ग्रहण कर यह सम्पूर्ण पंच भौतिक संसार हमारे ज्ञान का विषय बन जाता है। ऐसे ही गृहिणी रूपी सरस्वती अपनी संतानों के अन्नमय कोष को नीरोग, प्राणमय को सबल, मनोमय को निर्मल, विज्ञानमय को दीप्त और आनन्दमय कोष को सदा सोल्लास से संतृप्त करती है। घर–घर में माताएँ सरस्वती होकर बच्चों की सर्वांगीण उन्नति की साधिका बनती हैं।

इस पंचामृत का पान कर लेने वाला फकीर वह उदासीन फकीर नहीं होता है जिसका प्रारंभ में वर्णन किया गया है। वह फकीर राजाओं का राजा हो जाता है। देखिए इस फकीर का धीर गम्भीर किन्तु नीर–सा सरस स्वरूप। प्रातःकाल को राजधानी के प्रवेश द्वार पर वरिष्ठ राज प्रशासकों की भीड़ लगी है। सहसा बाहर से एक फकीर का वहाँ प्रवेश होता है, सभी ने फकीर को प्रणाम तो किया किन्तु उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। बोले हमारे राज्य का नियम है कि राजा की मृत्यु हो जाने पर राजधानी में प्रातः प्रथम प्रवेश करने वाले व्यक्ति को राजा बनाया जाता है, वह पाँच वर्ष तक शासन करता है, फिर पास में बहती नदी के पार उसे जंगल में छोड़ दिया जाता है। कई तो इस दहशत में पाँच वर्ष से पहले ही मर जाते हैं। जो महाभोग में पड़कर पाँच वर्ष पूरे कर लेते हैं, उन्हें नदी पार जंगल में भेज दिया जाता है, जहाँ वे हिंसक पशुओं का शिकार हो जाते हैं। जब बचने का कोई मार्ग नहीं दिखाई दिया, तो वह फकीर सिंहासन पर बैठ गया। मंत्रिमण्डल को आदेश कर प्रजारज्जन पूर्ण सुचारू राज्य संचालन किया। अन्तिम वर्ष में नदी पर पुल बनवाया, जंगल को व्यवस्थित कर के सुन्दर नगर बसा दिया। पाँच वर्ष पूर्ण होने पर जनता–जनार्दन के मध्य अपना विदाई समारोह आयोजित किया।. नदी के पार जाने की योजना बतायी। सभी शासन–तंत्र एवं प्रजातंत्र एक स्वर से उस फकीर राजा को राज्य त्यागकर न जाने के लिए मनाने लगे। उसने संसार नदी के इस पार व उस पार अथवा इहलोक एवं वह लोक दोनों ही सुन्दर सुखमय बना लिए थे। वही एक फकीर क्यों, कोई भी अमीर या साधारण जन जो उक्तानुसार **"वेद–व्योम से झरता गीता का मानवोदय पंचामृत"** पान कर लेता है, वह प्रजा–प्रभु दोनों का ही प्यारा बन जाता है।

'वरेण्यम्' अवन्तिका –प्रथम
रामघाट रोड, अलीगढ़

भक्त और भगवान के मध्य मंत्रात्मक संवाद

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

प्रातः यज्ञ के उपरान्त सभी भक्त (याज्ञिक) अपने घरों की ओर चल पड़े। केवल एक भक्त अपने स्थान पर बैठा–बैठा–सिसक–सिसक कर रो रहा था। उसके अन्तस् के भगवान करुणार्द्र हो गए और मनुष्यवाणी में पूछ बैठे–

"वत्स! क्यों सिसक रहे हो ?"

"भगवन्, आपके दर्शन, आपकी कृपा के लिए ही रो रहा हूँ। आर्यसमाज के दूसरे नियम में आपको 'दयालु' कहा गया है, कब करेंगे आप मुझ पर दया ?"

"तुम मुझ से क्या चाहते हो?"

"मुझे संसार रूपी सागर से पार कर दीजिए।"

"मैंने तुम्हें यज्ञ रूपी नौका तो पहले से ही दी हुई है। बस केवल तुम्हें उस नौका को देखने, समझने और तदनुकूल आचरण करने की आवश्यकता है।"

"कहाँ है वह यज्ञ नौका ?" भक्त ने विनम्र होकर पूछा।

ऋग्वेद (10.63.10) का एक मंत्र है। जिसमें यज्ञीय नौका द्वारा संसार रूपी सागर को पार करने का उल्लेख किया गया है। वह मंत्र इस प्रकार हैं–

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं
सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनासमस्रवन्तीमा
रुहेमा स्वस्तये।।

भगवन्, वेदमंत्र के एक–एक शब्द से स्पष्ट करके बता दीजिए कि कैसे यह यज्ञीय–नौका हमारे भौतिक दुःखों को दूर कर सकती है और परलोक गमन में सहायक हो सकती है। मैं बहुत ही शंकालु और अविश्वासी प्रकृति का व्यक्ति व्यक्ति हूँ। क्या यह यज्ञीय–नौका मेरी भली भाँति रक्षा कर पाएगी ?"

"हाँ, क्यों नहीं, मंत्र का पहला शब्द है–**'सुत्रामाणम्'** इसका अर्थ है कि यह यज्ञीय– नौका, अच्छी प्रकार रक्षा करने वाली है। यह आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक दुःखों से हमारी रक्षा करती है।"

"कहीं यह अत्यन्त छोटी तो नहीं, मुझे आधे रास्ते में धोखा तो नहीं देगी ?" भक्त ने शंका प्रकट की।

"नहीं, मंत्र का अगला शब्द है–**'पृथिवीं'** यह पृथ्वी के समान विस्तृत है। नदी, पर्वत, समुद्र, वृक्ष सब इसके अन्तर्गत आते हैं। यह फल–फूल, अन्न, वनस्पति आदि से परिपूर्ण है। साधक इसी पृथ्वी पर साधना करके परमपद को प्राप्त कर सकता है।"

भगवन्, आपने पृथ्वी के विस्तार का तो वर्णन कर दिया पर यह नहीं बताया कि यज्ञ–नौका की ऊँचाई कितनी है, क्या वह सूर्य–चन्द्रादि का स्पर्श कर सकती है?"

"वत्स, तुम्हारी शंका उपयुक्त ही है। मंत्र का अगला शब्द है– **'द्याम्'** इसका अर्थ है– द्युलोक या अन्तरिक्ष। इस नौका का फैलाव द्युलोक, अन्तरिक्ष या स्वर्गलोक तक है। तुमने सुना ही होगा–**'स्वर्ग कामो यजेत्'** अर्थात् स्वर्ग की कामना से यज्ञ करना चाहिए। द्युलोक में सूर्य, चन्द्रादि रहते हैं। यज्ञ का धूम सूक्ष्म होते हुए द्युलोक तक पहुँचता है और धूम होकर वर्षा के रूप में बरसता है।"

"यज्ञ–कर्म में कोई आशंका या उपद्रव की संभावना तो नहीं ?"

"चिन्ता मत करो वत्स, तुम्हारी आशंका को दूर करता है–मंत्र का अगला शब्द–**'अनेहसं'** इसका अर्थ ही होता है–उपद्रव या विघ्न बाधा रहित। यज्ञ जैसे महान कार्य में उपद्रव कैसा ? इससे तो शुभ परिणाम ही सामने आते हैं।"

"यज्ञ करने में अनेक दुःख झेलने पड़ते हैं, फिर हम यज्ञ क्यों करें ?" भक्त ने फिर शंका प्रकट की।

"तुम केवल दुःख के बारे में सोचते हो। दुःख के बाद ही तो सुख की अनुभूति होती है। वेद का **'सुशर्माणम्'** शब्द इसी की पुष्टि करता है। यज्ञ भौतिक और आध्यात्मिक सुख देता है। **'यज्ञाद भवति पर्जन्यो'** गीता के इस वाक्य में कहा गया है– यज्ञ से मेघ बनते हैं, मेघ से वर्षा होती है और वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है, उससे सुख की प्राप्ति होती है।"

"यह यज्ञीय नौका खंडित तो नहीं होती ?"

"यह खंडित क्यों होगी क्योंकि वेद–मंत्र के शब्द में इसके लिए **'अदितिम्'** अर्थात् अखंडित शब्द का प्रयोग किया जाता है। जो यज्ञीय नौका मानव–मात्र को संसार रूपी सागर से पार करती हो, जो वेदमंत्रों से अभिषिक्त हो, वह खंडित हो ही नहीं सकती।"

"भगवन्, यह यज्ञीय नौका कैसे बनाई गई है ?"

"वत्स, वेद–मंत्र के शब्द के अनुसार यह **'सुप्रणीतम्'** अर्थात् अच्छी तरह बनी हुई है। वेद, उपनिषद्, गीता आदि में इसी यज्ञीय नौका का वर्णन किया गया है। इसके बारे में कहा गया है–**'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'**, एक अन्य स्थान पर कहा गया है– **यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः,** अर्थात् यज्ञ ही इस भुवन की नाभि है।

"जैसे किसी वस्तु के निर्माण के लिए साधनों की आवश्यकता होती है क्या यज्ञीय नौका के लिए भी कुछ सामग्री आवश्यक है?"

"हाँ, क्यों नहीं, इसीलिए वेदमंत्र में **'स्वरित्राम्'** शब्द का प्रयोग हुआ है। इस शब्द का अर्थ है– सुन्दर मंत्रों वाली। यज्ञीय कार्यो में जिन बातों की आवश्यकता होती है उन्हें **'स्वरित्राम्'** कहा जा सकता है। हवन–कुण्ड, घी, सामग्री, समिधा, अग्नि, यज्ञीय पात्र, ब्रह्मा, अध्वर्यु, उद्गाता, पुस्तक आदि इसी **'स्वरित्राम्'** शब्द के सूचक हैं।"

"भगवन्, कभी–कभी नाव टपकने लगती है, उसमें छोटे–छोटे छेद हो जाते हैं, यदि यज्ञीय नौका की ऐसी स्थिति हो जाए ?"

"वत्स, तुम भक्त हो, नकारात्मक सोच नहीं रखनी चाहिए वेद–मंत्र में एक शब्द आया है–**'अस्रवन्तीम्'** इसका अर्थ है जो टपकती नहीं है, अर्थात् दृढ़ है। दूसरे विधि–विधान मूर्ति पूजा, गंगा–स्नान, चन्दन–तिलक, गुरुडम्, वृक्ष–पूजा आदि टपकने वाले हैं अर्थात् दृढ़ नहीं है जबकि यज्ञ–विधान पूर्ण वैज्ञानिक और शास्त्र–सम्मत है। वत्स, क्या अब भी कुछ शेष रह गया ?"

"हाँ, भगवन्, मंत्र में दो शब्द शेष रह गए और वे हैं– **'आरुहेम स्वस्तये'।**

"ये शब्द मैंने जान बूझकर तुम्हारे लिए छोड़ दिए थे। इनका अर्थ है– हम अपने कल्याण के लिए यज्ञीय नौका पर चढ़ें, बोलो! क्या चढ़ोगे ?"

"हाँ, भगवन्, अकेला ही नहीं, दूसरों को भी चढ़ाऊँगा। मेरी सारी आशंकाएँ दूर हो गई हैं।"

"तो फिर करो प्रार्थना–मंत्रोच्चारण!" भगवान ने मुस्कराते हुए कहा।

ज्यों ही भक्त ने आँखें बन्द की और थोड़े समय बाद आँखे खोली तो भगवान अदृश्य हो गए। भक्त सोचने लगा कि यह सपना था, कल्पना थी या और कुछ ?

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो. 9639149995

☞ पृष्ठ 04 का शेष

हमारा बनाने वाला

चोरी करता है। जीव, जीव के काम करता है ईश्वर ईश्वर के।

(प्रश्न) ईश्वर को न मानने से क्या हानि है ?

(उत्तर) एक तो अज्ञान। जो वस्तु है उसका न मानना मूर्खता है। दूसरे ईश्वर का चिन्तन करने से आदमी पापों से बचा रहता है। तीसरे ईश्वर को सर्वव्यापक मानने से जीव निर्भय और आनन्दमय रहता है अतः ईश्वर की स्तुति प्रार्थना, और उपासना अवश्य करनी चाहिए।

ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना का आशय

स्तुति–गुण–कीर्तन, श्रवण और ज्ञान होना, इसका फल प्रीति आदि होते हैं।

प्रार्थना–अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिए ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

उपासना–जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने कर्त्ता, ईश्वर को सर्वव्यापक और अपने को व्याप्य जानकर ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है। इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासन–जो–जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो–जो गुण नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति, शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना सगुण–निर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना कहती है।

– स्वमन्तव्योमन्तव्य प्रकाशः

'लेखक द्वारा लिखित ट्रैक्ट संख्या 34'
से साभार

गतांक से आगे...

आर्यसमाज के 150 वर्ष पूरे होने पर

आर्यसमाज का विस्तार

● इन्द्र विद्यावाचस्पति

ब व्याख्यानों में सभी ऊँचे राज्याधिकारी आया करते थे। स्वामी जी बिना भय या लिहाज़ के सच्चे धर्म का प्रचार करते थे। बरेली में एक ऐसी घटना हुई जिससे स्वामी जी के चरित्र का भली प्रकार चित्रण होता है। घटना का चरित्–लेखकों ने रुचि के अनुसार भिन्न–भिन्न भाषाओं में वर्णन किया है। मैं यहाँ पर महात्मा मुन्शीराम जी का किया वर्णन उद्धृत करता हूँ। यह पं. लेखराम जी के लिखे जीवन चरित की भूमिका में दिया गया है। महात्मा जी इस व्याख्यान में स्वयं उपस्थित थे, अतः उनका दिया हुआ विवरण अधिक यथार्थ है–

"एक रोज़ व्याख्यान देते हुए श्री स्वामी जी महाराज पुराणों की असम्भव बातों का खण्डन करते–करते उनकी सदाचार–शिक्षा की चर्चा करने लगे। उस समय पादरी स्काट, मिस्टर रेड, कलेक्टर जिला और मि. एडवर्ड साहब कमिश्नर डिवीजन पन्द्रह–बीस अंग्रेज़ों के साथ विद्यमान थे। स्वामी जी ने पुराणों की पंचकुमारियों की चर्चा करते हुए एक–एक के गुण बयान करने आरम्भ किए और पौराणिकों की बुद्धि पर शोक प्रकाशित किया कि द्रौपदी के पाँच पति कराके उसे कुमारी करार दिया। यह भी कहा कि कुन्ती, तारा, मन्दोदरी आदि को कुमारी कहना पौराणिकों की आचार सम्बन्धिनी शिक्षा को निकम्मा सिद्ध करता है। स्वामी जी की कथन–शैली ऐसी परिहासपूर्ण थी कि श्रोता उठने का नाम नहीं लेते थे। इस पर साहब कलेक्टर और साहब कमिश्नर आदि हँसते और प्रसन्नता प्रकाशित करते थे। किन्तु इस विषय को समाप्त करके स्वामी जी महाराज बोले–

"पुरानियों की तो यह लीला है, अब किरानियों की लीला सुनो। यह ऐसे भ्रष्ट हैं कि कुमारी के बेटा पैदा होना बताते, **फिर दोष सर्वज्ञ शुद्ध स्वरूप परमात्मा पर लगाते और ऐसा घोर पाप करते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते।**"

इतना कहना ही था कि कलक्टर साहब और कमिश्नर साहब के चेहरे मारे गुस्से के लाल हो गए, लेकिन स्वामी जी का व्याख्यान उसी ज़ोर से जारी रहा। उस रोज़ ईसाई मत का खण्डन व्याख्यान की समाप्ति तक करते रहे। दूसरे रोज़ सुबह को ही खजांची लक्ष्मीनारायण की साहब कमिश्नर बहादुर की कोठी पर तलबी हुई। साहब बहादुर ने फरमाया कि अपने पण्डित साहब को कह दो कि बहुत सख्ती से काम न लिया करें। हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं। हम तो बहस–मुबाहिसा में सख्ती से नहीं घबराते, लेकिन अगर जाहिल हिन्दू और मुसलमान बिगड़ गए तो तुम्हारे स्वामी पण्डित के व्याख्यान बन्द हो जाएँगे। खजांची साहब यह पैगाम स्वामी जी के पास पहुँचाने का वायदा करके बाहर चले आए। लेकिन स्वामी जी तक यह मजमून पहुंचाने वाला बहादुर कहाँ से मिलता? कई एक ड्योढ़ी–बड़दारों से प्रार्थना की, लेकिन कोई भी आगे बढ़ने की हिम्मत न कर सका। अन्त में दृष्टि एक नास्तिक पर पड़ी और उसका जिम्मा ठहराया गया कि वह मामला पेश कर देवे। खजांची साहब मय उस नास्तिक और चन्द दीगर आदमियों के कमरे में पहुँचे जिस पर नास्तिक ने सिर्फ यह कह कर कि खजांची साहब कुछ अर्ज करना चाहते हैं क्योंकि उन्हें कमिश्नर साहब ने बुलवाया था, किनारा किया और कुल मुसीबत खजांची साहब पर टूट पड़ी। अब खजांची साहब कहीं सिर खुजलाते हैं, कहीं गला साफ करते हैं। आखिर पाँच मिनट तक विस्मय से देख कर स्वामी जी ने फरमाया–"भाई, तुम्हारा तो कोई काम करने का समय ही नहीं है इसलिए तुम समय की कीमत नहीं समझ सकते। मेरा समय अनमोल है, जो कुछ कहना हो, कह दो।"

इस पर खजांची साहब बोले– "महाराज, अगर सख्ती न की जाए तो क्या हर्ज़ है? इससे असर भी अच्छा पड़ता है और अंग्रेज़ों को नाराज़ करना भी अच्छा नहीं है, इत्यादि।" ये बातें अटक कर और बड़ी मुश्किल से खजांची साहब के मुँह से निकलीं।

इस पर महाराज हँसे और फरमाया– "अरे बात क्या थी, जिसके लिए गिड़गिड़ाता है और हमारा इतना समय खराब किया, साहब ने कहा होगा, तुम्हारा पण्डित सख्त बोलता है, व्याख्यान बन्द हो जाएँगे, यह होगा, वह होगा। अरे भाई, मैं हौआ तो नहीं कि तुझे खा लूंगा। उसने तुझसे कहा, तू मुझसे सीधा कह देता। व्यर्थ इतना समय क्यों गँवाया।"

एक विश्वासी पौराणिक हिन्दू बैठा था, बोला– "देखा, यह तो कोई अवतार है, दिल की बात जान लेते हैं।"

"खैर, यहाँ तो जो कुछ हुआ सो हुआ। अब व्याख्यान का हाल काबिले ज़िक्र है। मैंने केशवचन्द्र सेन, लाल मोहन घोष, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एनी बेसेन्ट और अन्य बहुत से प्रसिद्ध व्याख्याताओं के भाषण सुने हैं, और वह भी उनकी बढ़ती के समय में। लेकिन मैं सच्चे दिल से कहता हूँ कि जो असर मुझ पर उस रोज़ के व्याख्यान ने किया और जो फसाहत मुझे उस रोज़ के सादे शब्दों में मालूम हुई, वह अब तक तो दिखाई नहीं दी। आगे की ईश्वर जाने। उस रोज़ आत्मा के स्वरूप पर व्याख्यान था। इसी प्रकरण में महाराज ने सत्य के बल पर बोलना प्रारम्भ किया। पादरी स्काट को छोड़कर पहले दिन के सब अंग्रेज़ सज्जन विद्यमान थे। कोई आदमी नहीं हिलता था। सब चुपचाप एकाग्र होकर व्याख्यान सुन रहे थे। मुझे पूरा व्याख्यान तो याद नहीं, यद्यपि उसके असर का अब तक अनुभव करता हूँ, किन्तु कुछेक शब्द मुझे मरते दम तक याद रहेंगे। ऋषि ने कहा– "लोग कहते हैं कि सत्य को प्रगट न करो। कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे, चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।" इसके बाद उस उपनिषद् वाक्य को पढ़कर जिसमें लिखा है कि आत्मा को न कोई हथियार छेद सकता है और न उसे आग जला सकती है, गरजती हुई आवाज़ में बोले– "**यह शरीर तो अनित्य है, इसकी रक्षा में प्रवृत्त होकर अधर्म करना व्यर्थ है। इसे जिस मनुष्य का जी चाहे नष्ट कर दे।**" **{इस आशय के शब्द ऋषि जी ने कई नगरों में कहे। ऐसा मानो कि ऋषि को यह स्पष्ट दीख रहा था कि सत्य भाषण के कारण उनका बलिदान होकर ही रहेगा। 'जिज्ञासु'}**

फिर चारों ओर अपनी तीक्ष्ण आँखों की ज्योति डालकर सिंहनाद करते हुए फरमाया– "लेकिन वह सूरमा वीर पुरुष मुझे दिखलाओ जो यह दावा करता है कि वह मेरी आत्मा का नाश कर सकता है। जब तक ऐसा वीर इस संसार में दिखाई नहीं देता, मैं यह सोचने के लिए भी तैयार नहीं हूँ कि मैं सत्य को दबाऊँगा या नहीं।"

लम्बे उद्धरण के लिए पाठक क्षमा करें। यह ऋषि दयानन्द की व्याख्यान शक्ति और निर्भयता का एक अच्छा दृष्टान्त है। जिन लोगों को ऋषि के व्याख्यान सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उन पर व्याख्यानों का बड़ा गहरा प्रभाव होता था। ऋषि की भाषण–शक्ति स्वाभाविक थी, उसमें बनावट या यत्नपूर्वक भाषा–निर्माण का नाम नहीं था। जो कुछ था, हृदय का शब्द था, एक निर्भय आत्मा का उद्गार था। यही कारण था कि ऋषि का भाषण सदा नया, सदा मनोरंजक और सदा शिक्षाप्रद होता था।

ऋषि पूरी तरह निर्भय थे। उनके जीवन की घटनाएँ निर्विवाद रीति से सिद्ध करती हैं कि किसी शारीरिक या मानसिक खतरे से घबराना उनके लिए असम्भव था। भय, यह शब्द उनके शब्दशास्त्र से निर्वासित हो गया था।

बरेली में ऋषि दयानन्द का पादरी स्काट से शास्त्रार्थ हुआ था। शास्त्रार्थ बड़ी शान्ति से हुआ। जनता पर उत्तम प्रभाव पड़ा। शास्त्रार्थ में आप बड़ी स्पष्टवादिता से काम लेते थे, परन्तु कभी प्रस्तुत विषय, सभ्यता की सीमा और सत्यप्रियता का साथ नहीं छोड़ते थे। प्रतिपक्षी के पक्ष को समझना, समझ कर उसे ठीक रूप से प्रकट करना और युक्तिपूर्वक उत्तर देना, यह शास्त्रार्थ के स्वर्णीय नियम ऋषि दयानन्द को मान्य थे। केवल शब्दों से ही मान्य नहीं थे, व्यवहार में भी मान्य थे।

बरेली के पीछे कई मास तक संयुक्त प्रान्त का भ्रमण जारी रहा। शाहजहाँपुर, लखनऊ, फर्रुखाबाद, कानपुर, इलाहाबाद और मेरठ आदि नगरों में ऋषि धर्म का प्रचार करते रहे। जहाँ आर्यसमाज नहीं बने थे, वहाँ उनकी स्थापना कर देते और जहाँ समाज की स्थापना हो चुकी थी, वहाँ उसके पुष्ट करने का उद्योग करते थे। धर्म–चर्चा का समारोह भी सभी जगह होता रहा। मेरठ से देहरादून और वहाँ से फिर मेरठ होते हुए स्वामी जी आगरा पहुँचे। आगरा संयुक्तप्रान्त का अन्तिम नगर था, जिसमें ऋषि दयानन्द ने धर्म–प्रचार करके आर्यसमाज की स्थापना की। आगरा से संयुक्तप्रान्त से विदाई लेकर ऋषि राजपूताना की ओर प्रस्थित हुए।

'आर्यसमाज का इतिहास'
प्रथम भाग से साभार

पत्र/कविता

नलिनी कान्त बागची

मुर्शिदाबाद में वर्ष 1896 में पैदा हुए नलिनी कांत बागची प्रतिभाशाली छात्र और अनुशीलन समिति के सदस्य थे। समिति ने अपने सदस्यों को क्रांति का काम करने के लिए अलग–अलग इलाकों में भेजा था। इसी सिलसिले में नलिनी कांत को भागलपुर भेजा गया। वहाँ उन्होंने अपने लंबे बाल कटवाए और कॉलेज में भर्ती हो गए। लेकिन चारों तरफ क्रांतिकारियों की धर–पकड़ होने के कारण बागची अपने साथियों के साथ चटगाँव चले गए। वहाँ उन्होंने एक कमरा किराए पर लिया और क्रांति की रूपरेखा बनाने लगे। एक साथी पहरा देता और बाकी लोग काम करते। रात को सोते समय भरी रिवॉल्वर तकिये के नीचे रखना उनकी आदत थी।

पड़ोस में किसी ने उनके बारे में पुलिस को बता दिया। तब बंगाली युवाओं का एक जगह एक साथ रहना संदिग्ध समझा जाता था। एक दिन तड़के पुलिस ने वह घर घेर लिया तो सभी गोली चलाते हुए भाग निकले।

10 जनवरी, 1918 की तारीख थी। बागची अपने साथियों के साथ असम की नवग्रह पहाड़ी पर अगले अभियान की योजना बना रहे थे। तीन दिन बाद क्रांतिकारियों ने बड़ी मुश्किल से भोजन का इंतजाम किया था। वे खाने बैठे ही थे कि पुलिस पहुँच गई। क्रांतिकारी कम संख्या में थे, लिहाज़ा मारे गए, पर नलिनी भाग निकले।

कई दिनों तक पहाड़ी पर बिना भोजन के छिपते–भागते हुए वे कमज़ोर हो गए थे। इसी बीच एक जंगली कीड़े ने उन्हें काट लिया। इलाज संभव न था, लिहाज़ा उनके शरीर में ज़हर फैलने लगा था। उन्हें आँखों से साफ दिखना बंद हो गया था। इसके बावजूद उनकी पिस्तौल से आग उगलना जारी था। किसी तरह वे ट्रेन से हावड़ा पहुँचे। लेकिन स्टेशन से बाहर निकलते ही वे एक पेड़ के नीचे गिर पड़े और दो दिन तक वहीं अचेत पड़े रहे। जहर के असर से उनके शरीर में चेचक के दाने जैसे फफोले पड़ गए थे। संयोग से अनुशीलन समिति के एक सदस्य ने उन्हें देखा, तो पीठ पर लादकर अपने घर ले गए। डॉक्टर वैद्य से इलाज कराने पर भेद खुल सकता था। हल्दी मिला छाछ उनके शरीर पर लगाए जाने से वे थोड़े स्वस्थ हुए, तो भागकर ढाका स्थित कल्ता बाज़ार के अपने पुराने ठिकाने पर जा पहुंचे, जहाँ तारिणी प्रसन्न मजूमदार समेत कुछ क्रांतिकारी साथी उन्हें मिले।

एक दिन पुलिस ने वह घर घेर लिया, तो क्रांतिकारी गोली चलाते हुए भागे। पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने उन्हें आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। नलिनी कांत ने अपनी एक गोली से साहब का टोप उड़ा दिया। दो सिपाही क्रांतिकारियों को पकड़ने के लिए दौड़े, लेकिन वे उनकी गोलियों से घायल हो गए। उन सबको बग्घी में डालकर मिटफोर्ड अस्पताल ले जाया गया। तारिणी प्रसन्न मजूमदार की उसी दिन मौत हो गई। सिपाही पातीराम भी मारा गया। लेकिन सब–इंस्पेक्टर और नलिनी कांत जीवित थे। पुलिस ने बागची से उनका नाम पूछा, तो उन्होंने मुस्कराकर कहा, **'मुझसे तुम कोई जानकारी प्राप्त नहीं कर सकते। मुझे शांति से मरने दो।'** आखिरकार 16 जून, 1918 को उन्होंने दम तोड़ दिया।

नलिनी कांत बागची ने किसी बड़े अभियान को भले अंजाम न दिया हो पर अनुशीलन समिति के सदस्य के तौर पर पूर्वी भारत के अलग–अलग इलाकों में अंग्रेज़ों के विरुद्ध सशस्त्र क्रांति का अभियान उन्होंने जारी रखा था। पश्चिम बंगाल सरकार ने मुर्शिदाबाद के बहरमपुर में एक सड़क उनके नाम पर कर रखी है। इसके अलावा बहरमपुर–जलंगी के बीच एक पुल भी उनके नाम पर है।

स्वामी गुरुकुलानन्द 'कच्चाहारी'
पिथौरागढ़ (उत्तराखण्ड)
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

उसे इन्सान कहते हैं

किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं ।
पराया दर्द अपनाए, उसे इन्सान कहते हैं।
कभी धनवान है कितना, कभी इन्सान है निर्धन।
कभी सुख है कभी दुःख है, इसी का नाम है जीवन।।
जो मुश्किल में न घबराए, उसे इन्सान कहते हैं।
किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं।।
यह दुनिया एक उलझन है, कहीं धोखा कहीं ठोकर।
कोई हँस–हँस के जीता है, कोई जीता है रो–रो कर।।
जो गिर कर फिर सँभल जाए, उसे इन्सान कहते हैं।
किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं।।
अगर ग़लती रुलाती है, तो यह राह भी दिखाती है।
बशर ग़लती का पुतला है यह अक्सर हो ही जाती है।।
जो ग़लती करके पछताए, उसे इन्सान कहते हैं।
किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं।
अकेले ही जो खा–खा कर, सदा गुजरान करते हैं।
यों भरने को तो दुनिया में, पशु भी पेट भरते हैं।।
'पथिक' जो बाँट कर खाये, उसे इन्सान कहते हैं।
किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं।।
किसी के काम जो आए, उसे इन्सान कहते हैं।
पराया दर्द अपनाए, उसे इन्सान कहते हैं।।
उसे इन्सान कहते हैं ! उसे इन्सान कहते हैं !

स्मृतिशेष पं सत्यपाल 'पथिक'

जातिवाद अब बन गया दोधारी तलवार
'मनीषी चिन्तन'

जाति व्यवस्था डालती, मनुज मनुज में फूट।
इसके कारण हो रही, पूर्ण विश्व में लूट।

मक्खन पर मक्खन धरो, करो न खड़े पहाड़।
भेड़ों को भी चाहिए, मिलनी सिंह दहाड़।

जाति प्रथा है कुप्रथा, डालो इसे उखाड़।
यह हिरण्यकश्यप सरिस, फिर से छाती फाड़।

लिखा न माथे पर कहीं, जाति पाति का नाम।
फिर क्यों झेले मेंढकी, आठों पहर जुकाम।

जातिवाद मीठा जहर, विषकन्या का रूप।
बच ले बच सकता अगर यह भादों की धूप।

समय समय पर कह गये, ऋषि, मुनि, संत सुजान।
रक्तपात में लिप्त है, जाति सहित शैतान।

सर्वोत्तम खुद को कहे, दहे प्रेम की कोख।
जातिवाद की धूप ने लिया सभी सुख सोख।

यह हिरण्यकश्यप सरिस, फिर से वक्ष विदार।
फिर नृसिंह बनजा मनुज, कूड़ा जाति बुहार।

नफरत करने चल दिए, करना तो था प्यार।
जातिवाद अब बन गया दोधारी तलवार।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन 'मनीषी'
डी–801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट,
सैक्टर –92, नया गुरुग्राम हरियाणा–122505
मो. 9810835335